Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

गीता में बुद्धियोग

डॉ0 बी0बी0 त्रिपाठी
शोध–निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर,
राजकीय महिला महाविद्यालय,
झाँसी उत्तर प्रदेश,भारत।

मंजीत कुमार वर्मा
शोधार्थी,विषय संस्कृत, नेहरू महाविद्यालय,
ललितपुर, सह बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी
उत्तर प्रदेश,भारत।

Article Info
Volume 4 Issue 6
Page Number: 14-16
Publication Issue :
November-December-2021
Article History
Accepted : 01 Dec 2021
Published : 10 Dec 2021

सारांश– मनुष्य संपूर्ण इन्द्रियों के वश में करके आत्मतत्व की साधना में स्थित रहता है, उसकी बुद्वि स्थिर हो जाती है। गीता में यही बुद्वियोग है।

मुख्य शब्द– गीता, बुद्धियोग, इन्द्रिय, आत्मतत्व, परमात्मा, जीव।

बुद्धि किसी भी प्राणी को दिया गया परमात्मा का सबसे बड़ा वरदान है। इस बुद्धि के कारण ही मनुष्य अन्य जीवों से श्रेष्ठ है। बुद्धियोग ही परमात्मा को प्राप्त करने का एक मात्र अवलम्ब है।

गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है–

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।

योगस्थ होकर कर्म करो कर्मफल का साथ छोड. दो, यश अपयश में एकसमान बुद्धि रखो। उस समत्वबुद्धि को ही योग कहते है। समत्वरूप बुद्धियोग की अपेक्षा कर्मकाण्डात्मक कर्म बहुत ही निम्न है। अतः बुद्धियोग का अवलम्ब बनों, फल की आकांक्षा से युक्त कर्म करने वाले निम्न कोटि के होते है। साम्य बुद्धि से कर्म करने वाले व्यक्ति के पाप और पुण्य दानों नष्ट हो जाते है। इस प्रकार साम्ययोग को ही स्वीकार करना चाहिए।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाययुज्यस्वयोगः कर्मसुकौशलम्।।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

योग कर्मों में कुशलता लाता है अतः सिद्वि प्राप्ति में योग की महत्वपूर्ण भूमिका है।

यहाँ भारतीय वैदिक तत्वज्ञान का बहुत बड़ा सिद्वान्त बतलाया गया है। मनुष्य और कर्म का अटूट संबंध है कर्म और उनके फल मिलने की अपेक्षा दोनों ही स्वभाविक रुप से हाथ से हाथ मिलाकर चलते हैं। यहीं मनुष्य का ईश्वरीय योजना के साथ संघर्ष होता है।

बुद्वि योग का तात्पर्य है निरन्तर बुद्वि से आत्मस्थित रहना। इसे ही परमात्मा से जुड़े रहना कहते हैं। बुद्वि योग का आश्रय लेकर समस्त कर्म करना है। बुद्वि से आत्मा में जो स्थित है उसके लिए पाप और पुण्य निरर्थक हो जाते हैं, क्योंकि वह अकर्ता हो जाता है यही समत्व योग है। इस बुद्वि योग द्वारा कर्म बन्धन से छूटा जा सकता है। बुद्वि ही ऐसा माध्यम है, जिससे अनासक्त (मुक्ति) होकर शरीर से कर्म किये जा सकते हैं।

वेद और उपनिषद् के भिन्न भिन्न सिद्वान्तों से उपलब्ध बुद्धि द्वारा समाधि में स्थित होने पर मनुष्य समता योग को प्राप्त होता है, अर्थात संसार में प्रचलित किसी एक अथवा बहुत विधियों का सहारा लेकर निरंतर साधना करते हुए जब बुद्धि समाधि में अचल और स्थिर हो जाती है तभी आत्मा से योग सिद्ध होता है। यह बुद्धि उस समय स्थिर होती है जिस समय मनुष्य बुद्धि द्वारा मन में स्थित संपूर्ण कामनाओं का त्याग कर देता है, उस समय वह आत्मा से आत्मा में संतुष्ट रहता है और वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मान्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

श्रीकृष्ण बुद्धियोग से युक्त प्राणी के विषय में कहते हैं–

कर्मजं बुद्वियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धन विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।

गीता में कहा गया है ज्ञानीजन ही बुद्धि द्वारा कर्मफल को त्याग करने में सक्षम होते हैं। अनासक्त होते ही चित्त की उद्विग्नता समाप्त हो जाती है और मन शान्त हो जाता है। अतः बुद्धियोगी जन्मबन्धन से मुक्त होकर निर्विकार उस परम पद को प्राप्त करते हैं। बुद्धि द्वारा ही मनुष्य को यह जानकारी होती है कि मोह (एक दूसरे के प्रति लगाव आकर्षण) ही संसार है और बुद्धि से ही मोह को त्यागने का रास्ता या साधन भी प्राप्त होता है।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासिनिर्वेदं श्रोतव्यस्यश्रुतस्यच।।

जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरूप दलदल को भलीभॉति पार कर जायेगी उस समय तू सुने हुए और सुनने में आने वाले इस लोक और परलोक सम्बन्धी सभी भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जायेगा।

जिस मनुष्य की बुद्वि स्थिर नहीं है वह किसी भी इन्द्रिय को रोककर उसके विषय को हठपूर्वक ग्रहण नहीं करने से विषय निवृत्त हो सकता है परन्तु उस विषय में आसक्ति निवृत्त नही होती है। स्थिर बुद्वि मनुष्य इन्द्रियों से कार्य करते हुए भी विषयों को ग्रहण नहीं करता है, उस पुरुष के विषय भी सीमित रुप से निवृत्त हो पाते हैं परन्तु

स्थितप्रज्ञ पुरुष के परमात्मा में स्थित होने पर आसक्ति पूर्ण रुप से निवृत्त होती है। क्योंकि पुरुष में आसक्ति इतनी प्रबल है कि यह आसक्ति नाश न होने के कारण, चंचल स्वभाव वाली इन्द्रियॉ रात दिन प्रयत्न करने वाले बुद्विमान साधक के मन को अपने प्रभाव से बलपूर्वक हर लेती है अर्थात् प्रयत्नशील बुद्विमान पुरुष भी इन्द्रियों के वेग के सामने लाचार हो जाता है।

अतः जो मनुष्य संपूर्ण इन्द्रियों के वश में करके आत्मतत्व की साधना में स्थित रहता है, उसकी बुद्वि स्थिर हो जाती है। गीता में यही बुद्वियोग है।

पाद टिप्पणी

1. श्रीमद्भगवद्गीता जयदयाल गोयन्दका गीता प्रेस गोरखपुर
2. संसारसागर का गीतादीपस्तंभ डा0 श्रीकृष्ण द0 देशमुख चौखम्भा संस्कृत भवन वाराणसी
3. यथार्थगीता श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द जी आश्रम ट्रस्ट
4- श्रीमदभगवदगीता श्रीमच्छाड.करभाष्याऽऽनन्दागिरिव्याख्यायुता आचार्य केशवलाल वि0 शास्त्री चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली